ग़ालिब का तसव्वुर-ए-शहर और दिल्ली

रिज़वानुल हक़

रचनात्मक साहित्य में आम तौर से और ग़ज़ल की शायरी में ख़ास तौर से यह ज़रूरी नहीं होता कि शायर ग़ज़ल में जिन बातों का इज़हार करे वह उसकी अपनी फ़िक्र का नतीजा हों, या उसके ज़ाती तजुरबात और एहसासात का इज़हार हों। कई बार शायर दूसरों के तजुरबात व एहसासात को भी बयान करता है और कभी-कभी वह रवायती मज़ामीन[1] को रस्मन बयान करता है और अपनी कल्पना से उसमें नया मज़मून पैदा करने की कोशिश करता है। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि ग़ज़ल का शायर जिन ख़यालात या एहसासात को बयान करता है, उसका उसकी ज़िंदगी या हक़ीक़त से बिलकुल ही कोई रिश्ता नहीं होता। दरअसल शायर सामने की हक़ीक़त को अपने तख़य्युल से मिलाकर एक नई हक़ीक़त की रचना करता है। अब इस मौज़ू पर अधिक गुफ़्तगू से बात अफ़लातून और अरस्तू तक पहुँचेगी जिसकी यहाँ बिलकुल गुंजाइश नहीं है।

'ग़ालिब का तसव्वुर-ए-शहर और दिल्ली' के मौज़ू पर ग़ौर करते वक़्त जो सवाल सबसे पहले ज़ेहन में उभरता है वह यह है कि क्या ग़ालिब के ज़ेहन में शहर का कोई मुनज़्ज़म[2] तसव्वुर था? और अगर मुनज़्ज़म नहीं तो क्या कोई ग़ैर मुनज़्ज़म ही सही क्या उनके ज़ेहन में शहर से वाबस्ता कोई तसव्वुर था? या शहर के तईं उनकी शायरी बिलकुल ख़ामोश है? इन सवालों के जवाब के लिए जब हम ग़ालिब की शायरी का मुताला' करते हैं तो कई ऐसे शे'र नज़र आते हैं जिनमें शहर और बस्ती जैसे लफ़्ज़ों का इस्तेमाल हुआ है, जो ये साबित करने के लिए काफ़ी हैं कि ग़ालिब की उर्दू शायरी शहर के तईं बिलकुल ख़ामोश नहीं है, और उनके ज़ेहन में शहर का कोई तसव्वुर ज़रूर रहा होगा। अब ये मुनज़्ज़म था या ग़ैर मुनज़्ज़म इसका अन्दाज़ा आगे के अध्ययन से ही होगा। ग़ालिब के नीचे लिखे अश्आर में शहर या बस्ती का लफ़्ज़ आया है:

क़ैस[3] भागा शहर से शर्मिन्दा होकर सूए दश्त[4]।
बन गया तक़लीद[5] से मेरी ये सौदाई[6] अबस[7]।।
आतिशे-अफ़रोज़िए[8] यक शोल-ए-ईमाँ मुझ से।
चश्मक आराइ[9] ए सद शहरे-चराग़ाँ मुझ से।।
आलम तिलिस्मे शहरे-ख़मोशाँ है सर बसर।
या मैं ग़रीबे-किश्वरे-गुफ़्त-ओ-शनूद था।।

अब मैं हूँ और मातमे-यक शहरे आरज़ू।
तोड़ा जो तू ने आईना तिमसालदार[10] था।।
हुआ है शह का मुसाहिब[11] फिरे है इतराता।
वगरना शहर में ग़ालिब की आबरू क्या है।।

1. विषय 2. सुव्यवस्थित 3. मजनूँ का असली नाम
4. जंगल की ओर 5. नक़्ल 6. दीवाना
7. बिला वजह 8. रोशन करने वाला
9. आँख के इशारे से

10. प्रतिबिम्बयुक्त 11. तारीफ़ करने वाला

خاب پیشگاہ شاہی سے عطا ہوا پسہ ساہ بہادر
واکر بعد خلوت رخصت چاہے پانچوین تاریخ
فوج حاضر ہون اور رسد روانہ ہو چھٹی تاریخ
ہ انہ ان بھی حاضر ہو کر تدرین گذرانین
دمان اللہ نے ایکہزار روپیہ عنایت فرمایا
کا صادر ہوا کہ تمکو مناسب ہے کہ حسب شورہ
کو خوشنودی حضور اسمین منصور ہے تین کمپنیان
ذیل آئین ہے تقسیم تنخواہ جلد ملاقات حکم ہوا
لت شرف حضور بیسی شرف ہوئے بعدہ دربار
لیم گذرا ہے اس روز بباعث بارش باران
ثوین تاریخ عرض ہوئے کہ گورنر جنرل بہادر نے
قابلہ مخالفان روانہ ملہ پور کی اور سوار
ئی

سیل عام ملک ہند

کا خاتمہ ۱۸۵۷ء سنہ عیسوی مین چھبیس کروڑ
سنہ عیسوی مین بیس کروڑ روپیہ نشست ہوا اور
ل ملک مضبط اور وہ بیس کروڑ ہوئی اور
پانچ کروڑ اور تجارات دیگر بالائی ہین
تضا قدرت کی عملداری مین اس سے زیادہ

سب اونکا حال سوزش ملال دیکھیہ و
کہ اکثرون نی اس روز کھانا حرام بھی
باوجودیکہ اہالیان پولیس نے اوسکے فرو
کہ اوسوقت جلکر بدنت تمام اپنی اپنی گھر
مجروحی چار چھکڑی مردون سوختہ کی
کے شہید بنا دیا گیا۔ اس روز مخالفو
دلیر کے ساتھ کئی مورچہ چھین لئے بعضین
قریبی شک سپاہ منصورہ گورونے بہا
محمد نظام الدین خان رسالہ دار بہادر نی ا
اور محمد یسین کوٹ حوالدار وغیرہ نی خو
عنایت ہے بہ نقربت کہونچہ درجہ شہ
شہادت پایا تو عنقریب مژدہ فتح و ظفر
و امیر معظم میر علی قاسم صاحب خلف
کراری ضلع الہ آباد با سید محمد صاحب
چند صد مردمان جرار و دلیر و کارگذار
انسے ملاقات نہین ہوئی مگر انکی نصفہا
قابلیت اور شجاعت اور اخلاق و مخاوت
ہے انشا اللہ بعد معانقہ و مصافحہ انکی

حسب حکم شہنشاہ دلی با تھا

منفرد رہتے بباعث طلاقت طبع راقم بہیہ اخبار ایک دن بعد نکلا کرین سات کرین

तुम शहर में हो तो हमें क्या ग़म, जब उठेंगे।
ले आएँगे बाज़ार से जाकर दिल-ओ-जाँ और।।
यूँ ही गर रोता रहा ग़ालिब, तो ऐ अहले-जहाँ।
देखना इन बस्तियों को तुम कि वीराँ हो गयीं।।
उलझते हो तुम, अगर देखते हो आईना।
जो तुम से शहर में हों एक दो तो क्योंकर हो।।
रोज़ इस शहर में इक हुक्म नया होता है।
कुछ समझ में नहीं आता कि क्या होता है।।

तो यह थी ग़ालिब की शायरी की कुल दुनिया जिनमें शहर या बस्ती का लफ़्ज़ आया है। इन अश्आर में कहीं शहर की किसी घटना का ज़िक्र है, कहीं किसी शहरे-चराग़ाँ, शहरे-ख़ामोशाँ, शहरे-आरज़ू वग़ैरा का ज़िक्र है, कहीं शहर में अपनी आबरू का ज़िक्र है लेकिन कहीं भी शहर क्या होता है, शहर का उनके ज़ेहन में क्या तसव्वुर है, और शहर से वह क्या उम्मीदें रखते हैं, इस बात का कहीं ज़िक्र नहीं है। इस तरह यह साबित होता है कि ग़ालिब के ज़ेहन में शहर का कोई सुव्यस्थित तसव्वुर नहीं था, या अगर होगा भी तो कम से कम उन्होंने उर्दू शायरी में इसका इज़हार नहीं किया है। लेकिन उपरोक्त शे'रों की रोशनी में ये कहा जा सकता है कि ग़ालिब की शायरी में सुव्यवस्थित न सही लेकिन शहर का कोई तसव्वुर ज़रूर था और उसका उन्होंने उर्दू शायरी में इज़हार भी किया है और अगर इन बिखरे हुए ख़यालात को जोड़ा जाए तो मुमकिन है एक सूरत भी बन जाए।

पहले शे'र को देखें। इस शे'र में 'तक़लीद से मेरी' में जो एक ख़ूबसूरत इशारा है और शायरी की जो दूसरी ख़ूबियाँ हैं उन सबको नज़रअंदाज़ करके सिर्फ़ अपने मौज़ू तक महदूद रहूँगा। क़ैस (मजनूँ का असली नाम) का शरमिंदा होकर शहर से भागना इस बात की तरफ़ इशारा है कि शहर में शरमिंदा होकर नहीं रहा जा सकता। यानी शहर बाशर्म या बाइज़्ज़त लोगों के रहने की जगह है और दूसरे मिसरे (पंक्ति) से पता चलता है कि शहर दीवानों के रहने की जगह नहीं है, यानी वहाँ होश वाले लोग ही रहते हैं। इस तरह इस शे'र से ग़ालिब का शहर के प्रति यह तसव्वुर उभरता है कि शहर शर्म और होश वालों के रहने के लिए होता है। ग़ालिब का एक दूसरा शे'र इस मज़मून को आगे बढ़ाता है और मेरे हासिल किए हुए इस नतीजे की हिमायत करता हैः

हर यक मकान को है मकीं[12] से शर्फ़ असद।
मजनूँ जो मर गया तो जंगल उदास है।।

12. रहने वाला

इस शे'र में मकान से मुराद ईंट गारे से बना मकान नहीं, रहने की जगह है, वह मकान, शहर, मुल्क और खुली जगह कुछ भी हो सकता है। यानी रहने की जगह को फ़ख़्र उसके रहने वालों से होता है और जंगल को मजनूँ पे फ़ख़्र था इसलिए वह मजनूँ की मौत पर उदास है। यहाँ क़ाबिलेग़ौर बात यह है कि दूसरे शे'र में मजनूँ है जबकि पहले शे'र में क़ैस है जबकि दोनों लफ़्ज़ एक ही शख़्स के लिए इस्तेमाल हुए हैं। और सही भी है कि क़ैस के मरने पर जंगल को उदासी नहीं हो सकती है उसे तो मजनूँ के मरने पर ही उदासी हो सकती है। इस तरह जंगल मजनूँ के रहने की जगह ठहरी और शहर होश वालों के रहने की। अगले शे'र हैंः

आतिशे-अफ़रोज़िए यक शोल-ए-ईमाँ मुझ से।
चश्मक आराइ-ए-सद शहरे-चराग़ाँ मुझ से।।
आलम तिलिस्मे-शहरे-ख़मोशाँ है सर बसर।
या मैं ग़रीबे-किश्वरे-गुफ़्त ओ शनूद था।।
अब मैं हूँ और मातमे-यक शहरे आरज़ू।
तोड़ा जो तू ने आईना तिमसालदार था।।

इन शे'रों से ग़ालिब का कोई तसव्वुरे शहर तो साफ़ नहीं होता अलबत्ता दूसरे शे'र में किसी चराग़ाँ शहर का ज़िक्र है उससे ये मालूम होता है कि चराग़ाँ होना शहर की एक विशेषता होती है और चराग़ाँ यानी रोशनी से भरपूर होना ज़िंदगी की नेक क़द्रों का प्रतीक है। इस तरह ये नतीजा हासिल होता है कि ज़िंदगी की नेक क़द्रें

शहर की विशेषता होती हैं। अगले शे'र में शहरे-ख़मोशाँ आया है यानी ऐसा शहर जहाँ सब ख़ामोश रहते हों। ये लफ़्ज़ दरअसल क़ब्रिस्तान के लिए इस्तेमाल होता है। इस तरह यह साबित होता है कि शहर के लिए गुफ़्त-ओ-शनूद (कहना-सुनना) ज़रूरी है और उसकी ग़ैर मौजूदगी में शहर क़ब्रिस्तान बन जाता है। चौथे शे'र में एक मिसाली या आरज़ुओं के शहर की तरफ़ इशारा करता है, दूसरे मिसरे में तिमसालदार आईना यानी बिम्बयुक्त दर्पण शहरे-आरज़ू ही है। इस शे'र में मिसाली या आरज़ुओं के शहर की बात तो है, लेकिन वह कैसा होगा? इसकी कोई तफ़सील नहीं है। अगला शे'र हैः

हुआ है शह का मुसाहिब फिरे है इतराता।
वगरना शहर में ग़ालिब की आबरू क्या है।।

इस शे'र में ग़ालिब अपने आप को बादशाह का मुसाहिब बताते हैं और कहते हैं कि मैं इसलिए शहर में इतराता फिर रहा हूँ और बाआबरू हूँ क्योंकि मैं बादशाह का मुसाहिब हूँ। यानी शहर में बाआबरू होना बड़े फ़ख़्र की बात है। इस शे'र के मुतालिक़ एक कहानी ये कही जाती है कि एक बार ज़ौक़ देहलवी सवारी से गुज़र रहे थे, तो ग़ालिब ने उनकी तरफ़ इशारा करके ये शे'र पढ़ा था और शे'र का यह अर्थ लगाने वाले ग़ालिब की जगह साले रख कर पढ़ते हैं। ज़ौक़ ने बादशाह से जा कर शिकायत की तो उन्होंने ग़ालिब को बुलवा भेजा तब उन्होंने साले की जगह ग़ालिब कह कर शे'र पढ़ दिया और इस तरह यह शे'र बादशाह की तारीफ़ में हो गया। इस शे'र से ये भी ज़ाहिर होता है कि शहर में किसी का बाआबरू रहना और इतराता फिरना सब कुछ बादशाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ होता है। इस शे'र में जो तंज़ है और इसकी जो पृष्ठभूमि है अगर वह अगर न मालूम हो तो इस शे'र का मतलब बिलकुल उलटा निकलेगा। अगला शे'र हैः

तुम शहर में हो तो हमें क्या ग़म जब उठेंगे।
ले आएँगे बाज़ार से जाकर दिल-ओ-जाँ और।।

ग़ालिब के इस शे'र में पेचीदगी बहुत है इसलिए इसमें मानी भी बहुत ज़्यादा हैं, साथ ही हमारे मौज़ू के लिहाज़ से भी यह शे'र बहुत अहम है। इसमें वह आधुनिक संवेदना है जिसने हमारी ज़िंदगी में तमाम क़दरों को नज़रअंदाज़ करके सिर्फ़ बाज़ारी नुक़्तए-नज़र से देखना सिखाया है। पहले मिसरे में 'तुम' से सारी ख़ुशियाँ वाबस्ता कर दी गई हैं और इसके रहते कोई ग़म नहीं हो सकता है। यहाँ तक कि वह जब चाहेगा तो दिल और जान तक बाज़ार से और ले आएगा। इसमें ऐसे बाज़ार का ज़िक्र है जहाँ हर चीज़ बिकती है, यहाँ तक कि दिल और जान भी। आज के सरमायादारी निज़ाम ने जंगल, दरिया, माहौल और समुन्दर सब चीज़ों को बाज़ार बना दिया है। इस शे'र में एक पहलू यह भी है कि कहने वाला सुनने वाले के सामने है और उससे यह सारे दावे महज़ चापलूसी में कर रहा है, लेकिन असल बात यह है कि इस शे'र में शहर में बाज़ार की ताक़त को बड़े ज़ोरदार तरीक़े से बयान किया गया है और शहर का सारा तसव्वुर ही बाज़ार पर क़ायम नज़र आता है, और इसमें भी वही तंज़िया लहज़ा है। सातवाँ शे'र हैः

यूँ ही गर रोता रहा ग़ालिब, तो ऐ अहले जहाँ।
देखना इन बस्तियों को तुम कि वीराँ हो गयीं।।

इस शे'र में शहर लफ़्ज़ नहीं आया है, इसके बदले 'बस्तियों' आया है। जो वैसे तो मुख़्तलिफ़ मानी भी रखता है लेकिन इस शे'र में दोनों लफ़्ज़ों के मानी तक़रीबन एक हैं। इस शे'र में रोने से बस्तियों के वीरान होने की बात कही गयी है। जिससे ज़ाहिर है कि हँसना और आबाद होना शहर की विशेषता होती हैं। आठवाँ शे'र हैः

उलझते हो तुम, अगर देखते हो आईना।
जो तुम से शहर में हों एक दो तो क्योंकर हो।।

शे'र बहुत ख़ूब है और बेशुमार मानी से पुर है, लेकिन मेरे मौज़ू के लिहाज़ से इस शे'र की बस इतनी अहमियत है कि इससे पता चलता है कि शहर में यूँ तो बहुत सी हसीनाएँ हैं लेकिन अगर उसके महबूब जैसी

कुछ हसीनाएँ और हो जाएँ तो शहर में फ़साद बरपा हो जाए। नवाँ शे'र हैः

रोज़ इस शहर में इक हुक्म नया होता है।
कुछ समझ में नहीं आता कि क्या होता है।।

ये शे'र कालीदास गुप्ता रज़ा ने *दीवाने-ग़ालिब* (कामिल) के असल मत्न (पाठ) में शामिल नहीं किया है, बल्कि इसे *'ग़ालिब के कुछ हंगामी मिसरे और शे'र'* के तहत रखा है। और इस तरह के मिसरों और शे'रों के बारे में वह लिखते हैंः "मुन्दरज-ए-बाला[13] अशआर की कोई अदबी हैसियत नहीं। ये ग़ालिब की शोख़िए-तबा और हाज़िरदिमाग़ी का आईना हैं। इनकी क़द्र-ओ-क़ीमत इस पर मुनहसिर है कि ये ग़ालिब के कहे हुए हैं। ज़ाहिर है, इन्हें *दीवान-ए-ग़ालिब* में शमिल करना महज़ दीवान का हुजम बढ़ाना होगा।" (पेज 58) *13. ऊपर लिखे*

जबकि ये शे'र ग़ालिब की एक अच्छी ग़ज़ल "शिकवे के नाम से बेमहर ख़फ़ा होता है" की ज़मीन में है। मैं कालीदास गुप्ता रज़ा की इस बात से मुत्तफ़िक़ नहीं हूँ। उन्हें इस शे'र को दीवान में उपरोक्त ग़ज़ल के साथ शामिल करना चाहिए था। ये शे'र हंगामी हालात में एक आम इन्सान की ज़ेहनी कैफ़ियत की अच्छी अक्कासी करता है। शे'र में इबहाम (छुपाने की कला) है कि वह कौन से हुक्म हैं जो रोज़ हाकिमे-वक़्त की जानिब से सादिर होते हैं और उनका क्या असर होता है? इस शे'र से ज़ाहिर होता है कि शहर में एक ऐसा ज़ालिम और दीवाना हाकिम है जो अवाम की कोई परवाह किए बग़ैर रोज़ एक फ़रमान भेज देता है। चाहे वह अवाम के हक़ में हो या न हो, यहाँ तक कि अवाम उस हुक्म को समझे या न समझे। शे'र की पूरी फ़ज़ा में एक बेयक़ीनी और ख़ौफ़ समाया हुआ है। ऐसे शे'र कभी पुराने नहीं पड़ते हैं।

उपरोक्त शे'रों की रोशनी में कहा जा सकता है कि ग़ालिब के ज़ेहन में शहर का तसव्वुर था कि शहर शर्म वालों और होश वालों के रहने की जगह है, शहर रौशन जगह होती है, यानी ज़िंदगी की अच्छी क़द्रें शहर में पायी जाती हैं। शहर के लिए गुफ़्त-ओ-शनूद यानी मुख़्तलिफ़ लोगों के दरम्यान बातचीत ज़रूरी है, इसके बग़ैर शहर क़ब्रिस्तान बन जाता है। इन शहरों के दरम्यान एक मिसाली या आरज़ुओं का शहर भी होता है। शहर में बाआबरू होना बहुत अहम है। शहर में एक बादशाह या हाकिम होता है और किसी का बाआबरू होना या किसी का इतराता फिरना उसी बादशाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ होता है। शहर में एक बाज़ार होता है, जहाँ से हर चीज़ ख़रीदी जा सकती है, दिल और जान भी। और शहर का सारा तसव्वुर ही बाज़ार पर क़ायम होता है। हँसी और आबाद होना शहर की विशेषताएँ होती हैं। शहर की एक ख़ूबी यह भी होती है कि वह हसीनों से भी आबाद होता है। और शहर में बादशाह या हाकिम होता है जो अवाम की परवाह नहीं करता और शहरी ज़िंदगी शदीद बेयक़ीनी और ख़ौफ़ में मुबतला होती है। क़ाबिलेग़ौर बात यह है कि बादशाह और बाज़ार के सिवा शहर के तक़रीबन तमाम तसव्वरात ऐसे है, जिनमें बेहतर ज़िंदगी का अक्स नज़र आता है।

ग़ालिब ने अपनी उर्दू शायरी में कुछ शहरों पर क़त्आत (शायरी की एक विधा) भी लिखे हैं। इनसे भी ग़ालिब के तसव्वुरे-शहर के बारे में कुछ इशारे मिलते हैं और ये हमारे मौज़ू में सहायक हो सकते हैं। जिन शहरों में दिल्ली, लखनऊ, कोलकाता, रामपुर और हैदराबाद शामिल हैं, वह क़त्आत निम्नलिखित हैंः

लखनऊ

लखनऊ आने का बाइस[14] नहीं खुलता यानी।
हवसे-सैर ओ तमाशा, सो वह कम है हमको।।
मक़तए[15]-सिलसिला-ओ-शौक़ नहीं है, ये शहर।
अज़्मे[16]-सैरे-नजफ़ व तूफ़े-हरम है हमको।।
लिये जाती है कहीं एक तवक़्क़ो ग़ालिब।
जादए-रह[17] कशिशे-काफ़े[18] करम है हमको।।
अब्र[19] रोता है कि बज़्मे-तरब आमादा करो।
बर्क़[20] हँसती है कि फ़ुरसत कोई दम है हमको।।
ताक़ते-रन्जे सफ़र भी नहीं पाते इतनी।

14. वजह 15. ख़त्म 16. इरादा 17. रास्ते का ख़र्चा
18. मेहरबानी का दिन 19. बादल
20. बिजली 21. ग़म

हिजरे-याराने-वतन का भी अलम[21] है हमको।।
लाई है मोतमुद्दौला बहादुर की उमीद
जादए-रह कशिशे-काफ़े-करम है हमको

कोलकाता

कलकत्ते का जो ज़िक्र किया तूने हमनशीं।
इक तीर मेरे सीने में मारा हाए हाए।।
वह सब्ज़ाज़ार[22] हाए मुतर्रा[23] कि है ग़ज़ब।
वह नाज़नीं बुताने-ख़ुद आरा कि हाए हाए।।
सब्र आज़मा वह उनकी निगाहें कि हफ़-नज़र[24]।
ताक़त रुबा[25] वह उनका इशारा कि हाए हाए।।
वह मेवा हाए ताज़ए-शीरीं कि वाह! वाह!
वह बादा[26] हाए नाबे-गवारा[27] कि हाए हाए।।

22. हरा-भरा मैदान 23. बारिश
24. नज़र न लगे 25. खीचने वाला 26. शराब
27. शुद्ध और मनपसन्द

रामपुर व हैदराबाद

हिन्द में अहले तसन्नुन[28] की हैं दो सल्तनतें।
हैदराबाद दकन रश्के-गुलिस्ताने इरम[29]।।
रामपुर अहले नज़र की है नज़र में वह शहर।
कि जहाँ हश्त-बहिश्त[30] आके हुए हैं बाहम[31]।।
हैदराबाद बहुत दूर है इस मुल्क के लोग।
उस तरफ़ को नहीं जाते हैं, जो जाते हैं तो कम।।
रामपुर आज है वह बुक़्आ-मामूर[32] कि है।
मरजा व मजमए-अशराफ़े-निज़ादे-आदम[33]।।
रामपुर एक बड़ा बाग़ है अज़ रूए-मिसाल।
दिलकश व ताज़ा शादाब व वसीह व ख़ुर्रम[34]।।
जिस तरह बाग़ में सावन की घटाएँ बरसें।
है उसी तौर पे याँ दजला फ़िशाँ, दस्ते[35]-करम।।

28. सुन्नी 29. जन्नत 30. सातों जन्नतें
31. मिलना 32. पवित्र जगह
33. शरीफ़ नस्ल के लोगों की पनाह की पवित्र जगह
34. खुशहाल 35. हाथ

अब्रे-दस्ते-करमे-कल्बे अली ख़ाँ से मुदाम[36]।
दुर्रे-शहवार[37] हैं, जो गिरते हैं क़तरे पैहम[38]।।
सुब्ह दम बाग़ में आ जाए जिसे हो न यक़ीं।
सब्ज़ओ बर्गे-गुल[39] व लाला पे देखे शबनम[40]।।
हब्बज़ा[41]! बाग़े हुमायूने तक़द्दुस[42] आसार[43]।
कि जहाँ चरने को आते हैं ग़ज़ालाने-हरम[44]।।
मसलक शरा[45] के, हैं राह रौ व राहे शनास।
ख़िज़्र भी याँ अगर आ जाए, तो उनके क़दम।।
मद्ह के बाद दुआ चाहिए, और अहले सुख़न।
इसको करते हैं बहुत बढ़ के बइग़राक़[46] रक़म[47]।।
हक़ से क्या माँगें? उनके लिए जब हो मौजूद।
मुल्क-ओ-गन्जीनए[48]-व ख़ील[49] व सिपा व कोस[50] ओ अलम[51]।।
हम न तबलीग़ के माइल, न ग़ुलू[52] के क़ायल।

36. हमेशा 37. बादशाहों की शान के मुताबिक़
मोती 38. मुसलसल 39. पुखुड़ी 40. ओस
41. बीज 42. पवित्र 43. सुन्नते रसूल 44. सोने
का हिरन जो काबे में लटकाया गया था
45. सरा को मानने वाला
46. डूब कर 47. लिखना 48. ख़जाना 49. बहुत
से घुड़सवार 50. बड़ा नक़्क़ारा 51. झण्डा
52. बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बात कहना

दो दुआएँ हैं कि वह देते हैं नव्वाब को हम।।
या ख़ुदा, ग़ालिबे-आसी के ख़ुदावन्द को दे।
दो वो चीज़ें कि तलबगार है जिनका, आलम।।
अव्वलन, उम्रे तबीई व दवामे-इक़बाल[53]।
सानियन[54], दौलते-दीदारे-शहंशाहे-उमम[55]।।

53. ख़ुशी के साथ वह उम्र जो कभी ख़त्म न हो
54. दूसरी 55. उम्मतें, यानी मक्का-मदीना जाने का अवसर

लखनऊ के क़त्ए से ग़ालिब के तसव्वुरे-शहर पर कुछ ख़ास रौशनी नहीं पड़ती है, बस इतना मालूम होता है कि शहर सैर ओ तमाशा के लिए भी जाना जाता है, और उन्हें मोतमुद्दौला से करम की उम्मीदें हैं, जो लखनऊ के नवाब थे। ग़ालिब की कोलकाता की यादें बड़ी पुरलुत्फ़ हैं, उनके लिए इस शहर का ज़िक्र माशूक़ा के ज़िक्र की तरह है, यानी शहर एक माशूक़ा की तरह हसीन है। इसके अलावा वहाँ की शराब और मेवों का भी वह बड़े पुरतपाक लहजे में ज़िक्र करते हैं। ज़ाहिर है इन चीज़ों का तसव्वुर भी वह शहर के साथ करते हैं। रामपुर के क़त्ए में वह हैदराबाद और रामपुर दोनों को बहिश्त बताते हैं और बहिश्त के बारे में वह कहते हैं:

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के ख़ुश रखने को ग़ालिब ये ख़याल अच्छा है।।

या

वह चीज़ जिसके लिए हमको हो बहिश्त अज़ीज़।
सिवाए बादओ गुलफ़ामे[56] मुश्क बू क्या है।।

56. फूल की तरह ख़ाल यानी महबूबा

या

सताइश[57] गर है ज़ाहिद इस क़द्र जिस बाग़े-रिज़वाँ[58] का।
वह इक गुलदस्ता है हम बेख़ुदों के ताक़े-निसयाँ[59] का।।

57. तारीफ़ 58. रिज़वान की बाग़ यानी जन्नत
59. भूला हुआ

इस तरह बहिश्त ग़ालिब की नज़र में एक ऐसी दुनियावी जगह नज़र आती है जहाँ दिल की मुरादें पूरी होती हैं, और ये मुरादें अकसर उनकी दिली ख़्वाहिशें होती हैं, या उनके तसव्वुर में बेहतरीन से बेहतरीन जो चीज़ हो सकती है, और वह अपने शहर में रह कर ख़्वाहिशें पूरी करना चाहते हैं। बहिश्त के साथ ग़ालिब के यहाँ कोई बहुत मुक़द्दस मज़हबी तसव्वुर नहीं उभरता है। और ये बात एक तरह से उर्दू शायरी की रवायत का हिस्सा है। रामपुर के क़त्ए में उसे बहिश्त बताने के बाद वह उसे बाग़ात, मौसम और तमाम ख़ूबियों का मजमुआ बना देते हैं। यह सारी चीज़ें रामपुर की हक़ीक़ी कम हैं, बल्कि ग़ालिब शहर में जिन चीज़ों की तवक़्क़ो करते हैं वही महसूस होती हैं।

वह अश्आर जिनमें शहर के बारे में इज़हारे-ख़याल है और लखनऊ, कोलकाता वग़ैरा पर लिखे गये क़त्आत, ग़ालिब का तसव्वुरे शहर समझने के लिए बुनियादी स्रोत हैं, लेकिन घर, दिल, मुल्क, आईना, गुलिस्तान, वतन वग़ैरा अल्फ़ाज़ बहुत बार शहर ही के मानी में इस्तेमाल किए गये हैं। इसकी एक वजह यह है कि उर्दू शायरी में आमतौर पर और ग़ज़ल में ख़ासतौर से लफ़्ज़ अपने अस्ल मानी में नहीं होते हैं, वह अकसर इस्तेआरा (रूपक) या अलामत (प्रतीक) होते हैं और इस्तेआरों या अलामतों में ये अल्फ़ाज़ एक दूसरे के हम मानी हो जाते हैं। दूसरी वजह यह है कि उर्दू शायरी में एक रवायत यह भी रही है कि जुज़ (हिस्सा) कह कर कुल मुराद लेना और कभी कुल कह कर जुज़ मुराद लेना। इस तरह से यह अल्फ़ाज अकसर शहर के हम मानी हो गए हैं। अब इस लेख में उपरोक्त लफ़्ज़ शहर के मानी में किस तरह इस्तेमाल हुए, इसकी तफ़सील में जाने से बात बहुत लम्बी हो जाएगी, मैं अपने दावे की दलील के तौर पर ग़ालिब की सिर्फ़ एक मिसाल देकर बात ख़त्म करूँगा, जहाँ घर का एक मानी शहर भी है:

उग रहा है दर-ओ-दीवार से सब्ज़ा ग़ालिब।
हम बयाबाँ[60] में हैं और घर में बहार आई है।।

60. वीराना, जंगल

ग़ालिब का तसव्वुरे शहर समझने के बाद अब हम देखेंगे कि ग़ालिब ने अपनी उर्दू शायरी में दिल्ली के

बारे में क्या कहा है। दीवाने-ग़ालिब कामिल में निम्नलिखित शे'रों में देहली या दिल्ली शब्दों का बराहे-रास्त इस्तेमाल हुआ हैः

कीजै जूँ अश्क और क़तरा ज़नी।
ऐ 'असद' है हनोज़[61] दिल्ली दूर।।

61. अब तक

बादशाही का जहाँ ये हाल हो ग़ालिब! तो फिर।
क्यों न दिल्ली में हर इक नाचीज़ नव्वाबी करे।।

है अब इस मामूरे[62] में क़हते-ग़मे उल्फ़त असद।
हमने ये माना कि दिल्ली में रहें, खावेंगे क्या।।

दिल्ली के रहने वालो 'असद' को सताओ मत।
बेचारा चन्द रोज़ का याँ मेहमान है।।

62. आबादी 63. वतन से बाहर
64. प्रकाशन केन्द्र 65. ख़ून का प्यासा

गर मुसीबत थी, तो ग़ुरबत[63] में उठा लेता, असद।
मेरी दिल्ली ही में होनी थी यह ख़्वारी हाए हाए।।

हाँ यही शाहराहे-देहली है।
मतबए[64]-बादशाहे-देहली है।।

शहरे-देहली का ज़र्रा-ज़र्रा ख़ाक।
तश्नए-ख़ूँ[65] है हर मुसलम्माँ का।।

अब है दिल्ली की तरफ़ कूच हमारा ग़ालिब।
आज हम हज़रते-नव्वाब से भी मिल आए।।

सरे-आग़ाज़े मौसम में अन्धे हैं हम।
कि दिल्ली को छोड़ें लोहारू जाएँ।।

उपरोक्त नौ शे'रों में से छह शे'र ग़ज़ल के हैं और तीन शे'र मुख़्तलिफ़ क़त्आत के हैं। आइये अब इन शे'रों पर एक नज़र डालते हैं कि ग़ालिब ने दिल्ली के बारे में अपनी शायरी में क्या लिखा है। पहला शे'र हैः

कीजै जूँ अश्क और क़तरा ज़नी
ऐ 'असद' है हनोज़ दिल्ली दूर

हनोज़ दिल्ली दूर का मतलब दिल्ली शहर का दूर होना ही नहीं है, इसका मतलब है कि अभी मंज़िल या मक़सद दूर है। यह शे'र 1816 का है और वह 1812/13 से मुस्तक़िल तौर पर देहली में थे। अपने वालिद अब्दुल्ला बेग ख़ान (1802) और चचा नसरुल्लाह बेग ख़ान (1806) के इंतक़ाल के बाद जब ग़ालिब जैसा ज़हीन और ख़ल्लाक़ (सृजनशील) इन्सान देहली जैसे शहर में आया होगा तो उसके दिल में क्या क्या ख़्वाब होंगे, इसका तसव्वुर आसानी से किया जा सकता है। लेकिन वह ख़्वाब जब पूरे होते नज़र नहीं आए तो ऐसे में यह शे'र एक गहरे दर्द की तरफ़ इशारा करता है। दूसरा शे'र हैः

बादशाही का जहाँ ये हाल हो ग़ालिब! तो फिर
क्यों न दिल्ली में हर इक नाचीज़ नव्वाबी करे

इस शे'र के दो पहलू हैं। इस शे'र का सबसे अहम लफ़्ज़ 'नाचीज़' है। अगर यह लफ़्ज़ अपने लिए है तो ये शे'र अपनी तुच्छता और बादशाह की महानता में है। लेकिन अगर यह नाचीज़ किसी दूसरे शख़्स को मान लिया जाए तो ये शे'र ऐसा शदीद और बराहे-रास्त प्रतिरोध का है कि इतनी बात पर उस शाही दौर में शायर की जान भी ली जा सकती थी। इसी दिल्ली में लगभग सौ साल पहले जाफ़र ज़टल्ली को एक शे'र कहने के जुर्म में फाँसी दे दी गयी थी। वैसे अगर ये नाचीज़ अपने लिए भी मान लिया जाए तो भी इसमें एक बहुत गहरा तंज़ तो है ही। इस तरह यह शे'र भी ग़ालिब को दिल्ली ने किस तरह मायूस किया है, इस बात को दिखाता हैः

है अब इस मामूरे में क़हते-ग़मे उल्फ़त असद।
हमने ये माना कि दिल्ली में रहें, खावेंगे क्या।।

इस शे'र में ग़ौर करने की बात ये है कि क़हत उल्फ़त का नहीं है बल्कि हालत ये है कि ग़मे-उल्फ़त भी नसीब नहीं। इसकी दलील दूसरे मिसरे में है कि हालत अब भुखमरी तक पहुँच गयी है, और ग़मे-उल्फ़त तभी बामानी होता है जबकि पेट भरा हो। इस तरह इस शे'र में रावी कहता है कि देहली में अब उल्फ़त नहीं मिलती, ग़मे उल्फ़त भी नहीं और अब तो खाने का भी कोई ठिकाना नहीं है, फिर ऐसी दिल्ली में कैसे रहा जाए? इस तरह यह शे'र भी ग़ालिब की देहली में नाउम्मीदी और मायूसी की तरफ़ इशारा करता है। चौथा शे'र हैः

दिल्ली के रहने वालों असद को सताओ मत।
बेचारा चन्द रोज़ का याँ मेहमान है।।

यह शे'र तो बराहे-रास्त दिल्ली वालों की शिकायत में है, और पिछले शे'र में दिल्ली छोड़ कर जाने को जो सोचा जा रहा था, यह उसी बात का ऐलान है और जाने की वजह ज़ाहिर है देहली वालों का सुलूक है। ये दोनों शे'र एक ही साल के लिखे हुए हैं। पाँचवाँ शे'र हैः

गर मुसीबत थी, तो ग़ुरबत में उठा लेता, असद।
मेरी देहली ही में होनी थी यह ख़्वारी हाए हाए।।

इस शे'र में भी दिल्ली में अपनी ख़्वारी यानी ज़िल्लत और रुसवाई का ही रोना है लेकिन इसमें इस बात का शिकवा है कि दिल्ली में मेरी मौत की वजह से मेरी रुसवाई और ज़िल्लत के अफ़साने मेरी मौत के बाद भी चर्चा में हैं। अगर बाहर कहीं मौत हुई होती तो लोग शायद मुझे भूल जाते। दिल्ली, जो उम्मीदों, ख़्वाबों और हसरतों का मरकज़ थी, इस शहर में ऐसी तवील ख़्वारी और भी तकलीफ़देह है। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए ग़ालिब ने एक शे'र और कहा थाः

हुए मर के हम जो रुसवा हुए क्यों न ग़र्क़े दरिया।
न कभी जनाज़ा उठता न कहीं मज़ार होता।।

अब तक के देहली से मुतालिक़ हमने ग़ालिब (पैदाइश 1797) की जिस शायरी का ज़िक्र किया है, वह सब 1826 से पहले की है। हमें ग़ालिब की ज़िंदगी के बारे में मालूम है कि दिल्ली में ग़ालिब का यह दौर वाक़ई में बड़ी मुश्किलों भरा था, उनकी माली हालत बहुत ख़राब थी, और शायर के तौर पर भी उनकी कोई शिनाख़्त नहीं बन पाई थी। ग़ालिब शदीद तौर पर क़र्ज़ में डूबे हुए थे। 1826 में उन्होंने भरतपुर का सफ़र किया, वहाँ से वापसी पर फ़िरोज़पुर झरका में रुके रहे और क़र्ज़ख़्वाहों के ख़ौफ़ से दिल्ली न आए। फिर वहीं से लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस, अज़ीमाबाद (पटना) और मुर्शिदाबाद होते हुए कोलकाता पहुँचे। इस तरह उन्होंने उत्तरी हिन्दुस्तान से पूर्वी हिन्दुस्तान के तक़रीबन तमाम अहम शहरों को देखा। बनारस पर उन्होंने एक और बहुत अच्छी मसनवी 'चराग़े दैर' (मंदिर का दिया) लिखी थी। यह सफ़र बुनियादी तौर पर पेन्शन के लिए था। 1829 में कोलकाता से वापस आए, एक लाहासिल लम्बे सफ़र से अभी वह उबर भी न ही पाए थे कि 1831 में पेन्शन का मुक़दमा ख़ारिज हो गया। इस तरह एक और सदमे से उन्हें गुज़रना पड़ा। इन शदीद मुश्किल भरे दिनों में ही उन्होंने निम्नलिखित ग़ज़ल कही थी जिसमें न सिर्फ़ दिल्ली बल्कि शहरी ज़िंदगी से बेज़ारी और मायूसी बहुत शिद्दत के साथ महसूस की जा सकती हैः

रहिए अब ऐसी जगह चल कर जहाँ कोई न हो।
हम सुख़न कोई न हो, और हम ज़ुबाँ कोई न हो।।
बे दर ओ दीवार सा इक घर बनाया चाहिए।
कोई हमसाया न हो और पासबाँ[66] कोई न हो।।

पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइये, तो नोहा-ख़्वाँ[67] कोई न हो।।

66. हिफ़ाज़त करने वाला
67. शोक गीत गाने वाला

ग़ालिब ने अपने क़त्आत में दिल्ली का जो ज़िक्र किया है उनमें सबसे पहला शे'र हैः

हाँ यही शाहराहे-देहली है
मतबए-बादशाहे-देहली है

यह शे'र ग़ालिब की किताब *'पंच आहंग'* का छन्दबद्धे इश्तेहार का है जो ग़ालिब ने किसी और के नाम से लिखा था। ज़ाहिर है इस शे'र की अदबी या मेरे मौज़ू के लिहाज़ से कोई ख़ास अहमियत नहीं है।

दूसरे शे'र को पूरे क़त्ए के पसमंज़र के साथ ही पढ़ना चाहिए।

दिल्ली

बस कि फ़ुआले-मा युरीद[68] है आज।
हर सिल्ह[69] शोर इंगलिस्ताँ का।।
घर से बाज़ार में निकलते हुए।
ज़हरा होता है आबे-इन्साँ[70] का।।
चौक जिसको कहें वह मक़तल है।
घर बना है नमूना ज़िन्दाँ[71] का।।
शहरे-देहली का ज़र्रा-ज़र्रा ख़ाक।
तश्न-ए-ख़ूँ है हर मुसलमाँ का।।
कोई वाँ से न आ सके याँ तक।
आदमी, वाँ न जा सके याँ का।।

68. एक अरबी क़ौल "मैं जो भी चाहता हूँ, करता हूँ"
69. हथियार 70. इन्सान का हौसला पस्त होना 71. क़ैदख़ाना

दिल्ली का क़त्आ अगरचे नौ शे'रों का है लेकिन मेरे मौज़ू के लिहाज़ से उपरोक्त पाँच शे'र ही अहम हैं। ये क़त्आ हमारी तारीख़ के एक निहायत अलमनाक हालात का बयान है। दिल्ली में इन्क़लाब 1857 में हिन्दुस्तानियों की हार के बाद अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तानियों पर और ख़ासतौर से मुसलमानों पर जो ज़ुल्म ढाए थे, ये क़त्आ उसी की ग़म भरी दास्तान है। ग़ालिब ने इससे पहले की शायरी में जहाँ-जहाँ भी दिल्ली का ज़िक्र किया था उसमें ज़ाती ग़मों और अपनी नाक़द्री का ज़िक्र किया था, अगरचे उनमें भी एक इन्सानी दर्द था, जिसे हर शख़्स महसूस कर सकता है लेकिन इस क़त्आ में ग़ालिब ने बराहे-रास्त तमाम देहली का दर्द बयान किया है। दिल्ली के गली-कूचों, चौक और बाज़ारों की जो हालत है, वहाँ जो ख़ौफ़ तारी है और अंग्रेज़ों का जो जंगलराज क़ायम है, यह क़त्आ उन हालात का बहुत ही दिल दोज़ बयान है। दिल्ली पर ग़ालिब का अगला शे'र हैः

अब है दिल्ली की तरफ़ कूच हमारा ग़ालिब।
आज हम हज़रते-नव्वाब से भी मिल आए।।

यह शे'र ग़ालिब ने दूसरी बार रामपुर के सफ़र से वापसी के वक़्त कहा था। इसमें और तो कोई ख़ास बात नहीं है, बस एक नुक़्ता यह है कि कूच करना मुहावरा अकसर किसी बड़े मक़सद, ख़ास तौर से जब जंग के मक़सद से सफ़र करते हैं, उस वक़्त कहते हैं। जैसा कि हम जानते हैं, रामपुर में ग़ालिब ने अपनी ज़िंदगी के तक़रीबन सबसे आसूदा दिन गुज़ारे थे। और शायद उनके ज़ेहन में हो कि रामपुर में जो इज़्ज़त ओ आराम उन्हें हासिल हुआ शायद, इस बार दिल्ली में भी वह ज़िंदगी मयस्सर आ जाए, जिसकी वह हमेशा से तमन्ना रखते थे और उन्हें कभी हासिल न हो सकी थी। दिल्ली पर उनका आख़िरी शे'र हैः

सरे आग़ाज़े मौसम में अंधे हैं हम।
कि दिल्ली को छोड़ें लोहारू को जाएँ।।

यह शे'र क़त्आ का है, जिसमें छः शे'र हैं। ये क़त्आ दिल्ली में बरसात की आमद के मौक़े पर कहा गया था, जिसमें दिल्ली में शराब पीने और आम खाने को मिलते हैं, जबकि लोहारू जहाँ पहले ग़ालिब की बीवी उमराव बेगम के बड़े अब्बा नवाब अहमद बख़्श हाकिम थे, वह 1826 में दस्तबरदार किए जा चुके थे और ये क़त्आ 1865-67 के दरम्यान का है। लोहारू के बारे में ग़ालिब ने इस क़त्आ में कहा है कि वहाँ न आम मिलते

हैं, न अंगूर और खाने में न इमली के खट्टे फूल मिलते हैं, न कड़वे करेले, महज़ गोश्त मिलता है, वह भी भेड़ का और रेशेदार। ज़ाहिर है इस क़त्आ में ग़ालिब ने दिल्ली की तारीफ़ की है।

इस तरह हम देखते हैं कि ग़ालिब के ज़ेहन में शहर का जो तसव्वुर था कि शहर होश, हया और शऊर वालों की जगह होती है, जिनमें आपस में विचार विमर्श होता रहता है, वह रौशन जगह होती है वग़ैरा वग़ैरा। आमतौर पर दिल्ली उसके ख़िलाफ़ नज़र आती है। शहर के तसव्वुर से उनकी शायरी उम्मीदों और ख़्वाहिशों से भरी है, जबकि दिल्ली के संदर्भ में उनकी शायरी महरूमी और मायूसियों से भरी नज़र आती है। हाँ, शहर के तसव्वुर से बादशाह का जो तसव्वुर उनके ज़ेहन में उभरता था, दिल्ली में तक़रीबन वैसा ही बादशाह उनकी शायरी में नज़र आता है।

इस मुताले से एक सवाल ज़ेहन में उभरता है कि ग़ालिब ने दिल्ली में शदीद परेशानी उठाई, बार-बार उन्होंने अपनी नाक़द्री का शिकवा किया, लेकिन ऐसा क्या था कि वह दिल्ली को नहीं छोड़ सके, जबकि बाहर उनके क़द्रदानों की कमी न थी। नवाब रामपुर ने उनकी इतनी क़द्र की और वह हमेशा चाहते रहे कि ग़ालिब रामपुर में ही रहें। ग़ालिब दो बार रामपुर गए ज़रूर, लेकिन उन हालात में जबकि दिल्ली में किसी भी तरह गुज़र-बसर के हालात न रहे, मजबूरी में गये और जैसे ही हालात कुछ साज़गार हुए वह फ़ौरन दिल्ली वापस आ गए। शायद इसकी एक वजह यह थी कि मुग़लिया सल्तनत के पतन के बावजूद दिल्ली को अभी भी शायरी, इल्म, दानिश और फ़न का मरकज़ होने का शर्फ़ हासिल था, और ग़ालिब की ज़िंदगी का अस्ल मक़सद यही फ़न थे। ज़ौक़ के इन्तक़ाल (1854) के बाद उन्हें किसी हद तक शायरी में वह मर्तबा भी हासिल हो चुका था जिसके वो पहले से मुस्तहक़ थे। उनके लिए माली मुश्किलें बहुत मानी न रखती थीं, और वह अपने लहू से शे'र ओ अदब का चराग़ रोशन करते रहे। दिल्ली उनसे वफ़ा करे या न करे लेकिन ग़ालिब एक सच्चे आशिक़ की तरह दिल्ली से वफ़ा करते रहे। तभी तो अल्लामा इक़बाल ने अपनी नज़्म 'मिर्ज़ा ग़ालिब' में कहा थाः

ऐ जहाने-आबाद! ऐ गहवार-ए-इल्म ओ हुनर।
हैं सरापा नाल-ए-ख़ामोश तेरे बाम ओ दर।।
ज़र्रे-ज़र्रे में तेरे ख़्वाबीदा हैं शम्स-ओ-क़मर।
यूँ तो पोशीदा हैं तेरी ख़ाक में लाखों गुहर।।
दफ़्न तुझमें कोई फ़ख़्रे-रोज़गार ऐसा भी है।
तुझमें पिन्हाँ कोई मोती आबदार ऐसा भी है।।

(ऐ आबाद जहाँ दिल्ली, ऐ ज्ञान और कला के केन्द्र, तेरी ख़ामोशी से रोने वाले दरवाज़े और छज्जे, यूँ तो तेरे कण-कण में सूरज और चाँद जैसे लोग हैं, यूँ तेरी ख़ाक में लाखों मोती छुपे हैं, लेकिन क्या तुझमें कोई ग़ालिब जैसा बाकमाल है? क्या कोई ऐसा क़ीमती मोती है?)